सैनिकों का जयचन्द्र की विशाल सेना से सामना हुआ। दुर्भाग्यवश हाथी पर सवार जयचन्द्र की आंख में एक तीर लग जाने से वह गिर पड़ा तथा उसकी मृत्यु हो गयी। सेना में भगदड़ मच गयी तथा मुसलमानों की विजय हुई। गोरी ने असनी (फतेहपुर) स्थित जयचन्द्र के राजकोष पर अधिकार कर लिया। आक्रमणकारियों ने स्त्रियों तथा बच्चों को छोड़कर सबकी हत्या कर दी। मुहम्मद गोरी ने कन्नौज तथा बनारस को खूब लूटा। बनारस के लगभग एक हजार मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया गया तथा उनके स्थान पर मस्जिदें बनवायी गयी। आक्रमणकारियों के हाथ लूट की भारी सम्पत्ति एवं बहुमूल्य वस्तुयें लगीं। इस प्रकार गहड़वाल साम्राज्य का पतन हुआ।

ऐसा लगता है कि चन्दावर के युद्ध के बाद भी कुछ समय तक कन्नौज पर गहड़वालों की सत्ता बनी रही तथा मुसलमानों ने वहाँ अधिकार नहीं किया। मात्र फरिश्ता ही ऐसा लेखक है जो मुसलमान सेनाओं के कन्नौज पर अधिकार करने की बात करता है। किन्तु वह बाद का लेखक होने के कारण विश्वसनीय नहीं लगता। कुछ ऐसे संकेत मिलते हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि जयचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र ने कुछ समय तक अपने पिता के बाद कन्नौज पर शासन किया। मछलीशहर (जौनपुर) से प्राप्त उसके एक लेख (1198 ई0) में उसे "परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वराश्वपति गजपति–राजत्रयाधिपति विविध विद्याविचारवाचस्पति श्री हरिश्चन्द्र देव" कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि वह एक स्वतंत्र शासक की हैसियत से शासन कर रहा था। लेख से पता चलता है कि उसने पमहई नामक गाँव दान में दिया था।

हरिश्चन्द्र के पश्चात कन्नौज के गहड़वाल साम्राज्य का अन्त हो गया तथा वहाँ चन्देलों का अधिकार स्थापित हुआ।

शाकम्भरी का चाहमान वंश

बारहवीं शती का सर्वाधिक शक्तिशाली एवं विस्तृत साम्राज्य चाहमानों का था। इसका आविर्भाव जांगल देश में हुआ जिसे बाद में सपादलक्ष कहा गया। इसकी राजधानी अहिच्छत्रपुर में थी। इस स्थान की पहचान मारवाड़ के नागोर (प्राचीन नागपुर) से की जाती है। पहले बीकानेर राज्य के भू–भाग को जांगल कहा जाता था। सपादलक्ष का अर्थ है सवा लाख ग्रामों वाला क्षेत्र। संभवतः जांगलदेश में इतने ही गाँव थे जिसके कारण यह नाम भी प्रचलित हो गया। यहाँ के पहले राजा का नाम वासुदेव मिलता है जिसने अजमेर के उत्तर में साम्भर (शाकम्भरी) क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया। दशरथ शर्मा का विचार है कि चाहमान नामक व्यक्ति इस वंश का संस्थापक अथवा आदि पुरुष था। इसी कारण इस वंश को चाहमान अथवा चौहान कहा गया। शाकम्भरी नाम स्थानीय देवी का था जिसके चाहमान उपासक थे। साहित्यिक ग्रन्थों—पृथ्वीराज विजय तथा सुरजनचरित, से पता चलता है कि इसी देवी की कृपा से वासुदेव ने साम्भर क्षेत्र प्राप्त किया था।

इतिहास के स्रोत

शाकम्भरी के चाहमान वंश का इतिहास हमें उसके शासकों द्वारा खुदवाये गये लेखों तथा समकालीन साहित्य से ज्ञात होता है। इस वंश के प्रारम्भिक इतिहास तथा वंशावली का ज्ञान हमें विग्रहराज द्वितीय के हर्ष (जयपुर, राजस्थान) प्रस्तर अभिलेख तथा सोमेश्वर के समय के बिजोलिया प्रस्तर अभिलेख से होता है। प्रथम की तिथि विक्रम संवत् 1030 अर्थात् 973 ईस्वी तथा द्वितीय की तिथि विक्रम संवत् 1226 अर्थात् 1169 ईस्वी है। इनमें इस वंश के राजाओं की राजनैतिक तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों का विवरण प्राप्त होता है। विग्रहराज चतुर्थ के समय का दिल्ली शिवालिक स्तम्भलेख, जिसकी तिथि विक्रम संवत् 1220 अर्थात् 1164 ईस्वी है, दिल्ली तथा समीपवर्ती क्षेत्रों में उसकी विजय की सूचना देता है।

चाहमान युग की साहित्यिक रचनाओं में सर्वप्रथम उल्लेख जयानक भट्ट द्वारा रचित 'पृथ्वीराजविजय' नामक महाकाव्य का किया जा सकता है। इसकी रचना पृथ्वीराज तृतीय के समय में की गयी थी। इसमें वर्णित घटनाओं की पुष्टि अभिलेखों से भी हो जाती है। इस प्रकार यह ग्रन्थ इस काल की घटनाओं की जानकारी का प्रमुख स्रोत है। अन्य रचनाओं में जयचन्द्र का हम्मीर–महाकाव्य है जो चाहमान वंश के इतिहास तथा परम्पराओं का आदि काल से विवरण देता है, किन्तु इसका विवरण पृथ्वीराजविजय के विवरण जैसा प्रामाणिक नहीं है। चन्दबरदाई के पृथ्वीराजरासो का भी महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि यह ग्रन्थ अतिरंजित आख्यानों से पूर्ण है, तथापि चाहमान तथा अन्य समकालीन राजपूत वंशों के इतिहास से सम्बन्धित कुछ उपयोगी बातें इससे ज्ञात हो जाती हैं। इसी प्रकार का दूसरा ग्रन्थ 'बीसलदेवरासो' है जो इस काल के सांस्कृतिक इतिहास जानने का प्रमुख साधन है।

अभिलेखों तथा साहित्यिक ग्रन्थों के अतिरिक्त समकालीन मुसलमान लेखकों के विवरण भी चाहमान इतिहास से

सम्बन्धित कुछ सूचनायें प्रदान करते हैं। इनमें अल्बरूनी, उत्वी, हसननिजामी, मिनहाजुद्दीन, फरिश्ता आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके विवरण से हम चाहमान-तुर्क संघर्ष के विषय में ज्ञात करते हैं। साथ ही साथ ये लेखक पूर्व मध्ययुगीन समाज तथा संस्कृति का भी न्यूनाधिक विवरण देते हैं।

राजनैतिक इतिहास

प्राचीन काल में चाहमानवंश की कई शाखायें थी जो कन्नौज के प्रतिहारों की सामन्त थी। इनमें शाकम्भरी वाली शाखा ने ही सामन्त स्थिति से ऊपर उठकर सार्वभौम स्थिति प्राप्त किया था। वासुदेव के बाद सामन्तराज शासक बना। इन दोनों के संबंधों के विषय में कुछ भी पता नहीं है। बिजौलिया लेख तथा पृथ्वीराज विजय में कहा गया है कि अनेक सामन्त उसकी सत्ता स्वीकार करते थे। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वह कुछ शक्तिशाली राजा था जिसने अपने राज्य का विस्तार किया। उसका उत्तराधिकारी नरदेव अथवा पूर्णतल्ल था, जो एक साधारण शासक था। उसे 'नृप' कहा गया है। उसके पश्चात् सामन्त का पुत्र अजयराज अथवा जयराज राजा बना। कुछ विद्वानों के अनुसार उसने अजमेर के दुर्ग (अजयमेरु) का निर्माण करवाया तथा नगर की स्थापना की। उसके बाद विग्रहराज, चन्द्रराज तथा गोपेन्द्रराज बारी-बारी से शासक बने जिनकी उपलब्धियां शून्य हैं। गोपेन्द्र का पुत्र तथा उत्तराधिकारी दुर्लभराज प्रथम प्रतिहार नरेश वत्सराज का सामन्त था तथा अपने स्वामी की ओर से त्रिकोण संघर्ष में भाग लिया था। पृथ्वीराज विजय में उसे चन्द्रराज का पुत्र कहा गया है। ज्ञात होता है कि उसने गौड़ नरेश धर्मपाल को युद्ध में पराजित किया तथा गौड़ देश का उपभोग किया था।

दुर्लभराज का पुत्र गूवक उसके बाद राजा बना। वह एक शक्तिशाली राजा था जिसके विषय में हर्ष अभिलेख का कथन है कि उसने नागावलोक की सभा में वीर के रूप में प्रसिद्धि पाई थी (श्रीमन्नागावलोक प्रवरनृपसभालब्धवीर प्रतिष्ठः)। यह नागावलोक निश्चयतः प्रतिहार वत्सराज का पुत्र और उत्तराधिकारी नागभट्ट द्वितीय था। संभव है उसने भी नागभट्ट की युद्धों में सहायता कर योद्धा के रूप में अपने को प्रतिष्ठित कर दिया हो। उसने श्रीहर्षदेव के मन्दिर का निर्माण करवाया था। उसका पुत्र चन्द्रराज द्वितीय (शशिनृप) उसका उत्तराधिकारी हुआ जिसकी कोई उपलब्धि नहीं है। किन्तु उसका पुत्र गूवक द्वितीय अपने पितामह के समान वीर और साहसी था। उसने अपनी बहन कलावती का विवाह भोज के साथ करके प्रतिहारों के साथ अपने वंश का घनिष्ठ संबंध स्थापित कर दिया। इस संबंध ने भोज की प्रतिष्ठा में भी वृद्धि कर दी जैसा कि प्रतापगढ़ लेख से सूचित होता है। गूवक द्वितीय के बाद उसका पुत्र चन्दनराज राजा बना। हर्ष प्रस्तर लेख से पता चलता है कि उसने युद्ध में तोमर राजकुमार रुद्र को पराजित कर मार डाला था। (हत्वा रुद्रेन भूपम् समरभुवि बलाद्येन लब्धा जयश्रीः)। यह संभवतः दिल्ली क्षेत्र का शासक था। इसके साथ ही चाहमानों तथा तोमरों के बीच दीर्घकालीन संघर्ष का सूत्रपात हुआ। रुद्र की महारानी रुद्राणी अथवा आत्मप्रभा शिव की महान् भक्त थी। उसने पुष्कर झील के किनारों पर एक हजार शिवलिंगों की स्थापना करवाई। अपने नेक कार्यों के कारण वह 'योगिनी' नाम से भी विख्यात हो गयी।

चन्दनराज का पुत्र और उत्तराधिकारी वाक्पतिराज अपने पिता के उपरान्त राजा बना। पृथ्वीराजविजय में उसे 188 विजयों का श्रेय प्रदान किया गया है। इस समय राष्ट्रकूटो के आक्रमण के कारण प्रतिहार साम्राज्य की स्थिति निर्बल पड़ गयी थी। वाक्पतिराज ने इसका लाभ उठाते हुए अपनी शक्ति का विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया। इस क्रम में उसने तंत्रपाल को पराजित किया। हर्ष लेख में कहा गया है कि वाक्पति ने 'अपने स्वामी की आज्ञा से अनन्त देश की ओर तेजी से उदण्डता के साथ आते हुए तंत्रपाल को वापस लौटने के लिये मजबूर किया।' यह तंत्रपाल प्रतिहार नरेश महीपाल का कोई अधिकारी या सामन्त प्रतीत होता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वाक्पतिराज की शक्ति बढ़ती जा रही थी और उसके पास तीव्रगामी अश्वों की एक सबल सेना थी। अब वह सामन्त स्थिति से छुटकारा पाने का प्रयास भी कर रहा था। उसने अपनी स्थिति मजबूत करने के लिये चन्देल नरेश हर्ष के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित कर लिये। बिजौलिया लेख उसे 'विन्ध्यपति' कहता है। संभव है उसने मेवाड़ स्थिति बिजौलिया को जीता हो जिसे 'विन्ध्यावती' भी कहा जाता था। इस प्रकार वाक्पतिराज एक शक्तिशाली शासक था। सर्वप्रथम उसी ने अपने वंश में 'महाराज' की उपाधि धारण की। वह शिव का उपासक था जिसने पुष्कर में एक भव्य शैवमन्दिर का भी निर्माण करवाया था। उसने चाहमान वंश को इतना शक्तिशाली बना दिया कि वह प्रतिहार सत्ता की अधीनता से मुक्त होने में समर्थ हो गया।

प्रभुतासम्पन्न चाहमान साम्राज्य का उत्कर्ष : सिंहराज

दसवीं शताब्दी के मध्य से प्रतिहारों की शक्ति का ह्रास प्रारम्भ हो गया। देवपाल (948-950 ई0) इस वंश का अन्तिम महान् शासक था। उसी के राज्यकाल अथवा उसके तुरन्त बाद ही चाहमान नरेश सिंहराज ने प्रतिहारों की अधीनता से मुक्त होने का जोरदार प्रयास किया तथा स्वयं महाराजाधिराज की उपाधि धारण कर ली। उसके अधिपति

देवपाल अथवा विजयपाल ने अपनी सत्ता पुनः स्वीकृत कराने के उद्देश्य से जो सेना भेजी, उसे सिंहराज ने पराजित किया तथा तोमरवंशी सलवण की हत्या कर उसके कई सहायकों को बन्दी बना लिया। उनके बचाव का कोई उपाय न देखकर प्रतिहार सम्राट को स्वयं उसके सम्मुख उपस्थित होकर उनकी मुक्ति के लिये निवेदन करना पड़ा। हर्ष प्रस्तर लेख में यह विवरण सुरक्षित है। इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि चाहमान संप्रभु साम्राज्य स्थापित करने की दिशा में तेजी से अग्रसर हो चुके थे तथा प्रतिहार नरेश उन्हें नियंत्रित करने में असमर्थ थे। दसवीं शती के अन्त तक आते-आते चाहमानों ने प्रतिहार सत्ता का जुआ पूर्णतया उतार फेका।

विग्रहराज द्वितीय

सिंहराज के बाद उसका पुत्र तथा उत्तराधिकारी विग्रहराज द्वितीय हुआ। सच्चे अर्थों में वही अपने वंश का स्वतंत्र राजा था। हर्ष लेख में कहा गया है कि उसने अपने वंश की राजलक्ष्मी का उद्धार किया था।[1] पृथ्वीराजविजय तथा प्रबन्धचिन्तामणि से ज्ञात होता है कि उसने गुजरात के चालुक्य शासक मूलराज प्रथम के ऊपर आक्रमण किया। मूलराज पराजित हुआ तथा उसने भाग कर कन्थादुर्ग में शरण ली। विग्रहराज उसके राज्य से होता हुआ भृगुकच्छ गया जहाँ उसने आशापुरी देवी का मन्दिर बनवाया। प्रबन्धचिन्तामणि से पता चलता है कि इसी समय तिलंग देश के तैलिप (कल्याणी के चालुक्य नरेश तैल द्वितीय) की सेना ने वारप्प के नेतृत्व मे गुजरात पर आक्रमण किया था। मूलराज दोनों का सामना करने में विफल रहा तथा उसने भागकर कन्थादुर्ग में शरण ली थी। हम्मीर काव्य से पता चलता है कि मूलराज, विग्रहराज द्वारा मार डाला गया। लेकिन यह कथन सही नहीं लगता। द्वाश्रयकाव्य से पता चलता है कि मूलराज तथा उसके प्रुत्र चामुण्ड ने वारप्प पर आक्रमण कर उसे पराजित किया तथा मार डाला था। ऐसा प्रतीत होता है कि मूलराज ने विग्रहराज के सम्मुख आत्मसमर्पण किया तथा इसके बाद दोनों ने मिलकर लाट प्रदेश के शासक वारप्प पर आक्रमण कर उसे मार डाला। इसी विजय के उपलक्ष्य में विग्रहराज ने भृगुकच्छ में मन्दिर का निर्माण करवाया होगा। इस प्रकार विग्रहराज एक शक्तिशाली राजा था जिसने दक्षिण की ओर नर्मदा तक सैनिक अभियान किया। उसके अश्वशक्ति काफी बड़ी थी। आत्मसमर्पण करने वाले शत्रुओं के प्रति वह बड़ा उदार एवं सहिष्णु था। पृथ्वीराजविजय से पता चलता है कि उसने श्री हर्षदेव के मन्दिर के निर्वाह के लिये क्षत्रचर एवं शंकरंक नामक दो गाँव दान में दिये थे।

दुर्लभराज द्वितीय

विग्रहराज द्वितीय के बाद उसका छोटा भाई दुर्लभराज द्वितीय राजा बना क्योंकि विग्रहराज के कोई पुत्र नहीं था। लेखों में उसे 'दुर्लघ्यमेरु' अर्थात् जिसकी आज्ञा का उल्लंघन न किया जा सके कहा गया है। किन्तु हम उसकी किसी भी उपलब्धि के विषय में नहीं जानते। उसके किंसरिया लेख से सूचित होता है उसने रसोशित्तन मण्डल को अपने राज्य में मिलाया। इसकी पहचान हरियाणा के रोहतक क्षेत्र से की गयी है जहाँ पहले तोमरवंश का अधिकार था। संभवतः इसी चाहमान शासक ने सुल्तान महमूद का सामना करने के लिये आनन्दपाल के नेतृत्व में बने हिन्दू राजाओं के संघ में भाग लिया था। किन्तु वे महमूद को रोक नहीं पाये।

गोविन्दराज द्वितीय

दुर्लभराज द्वितीय के बाद उसका पुत्र गोविन्दराज द्वितीय राजा बना जिसे 'वैरिधरट्ट' अर्थात् शत्रुओं को नष्ट करने वाला कहा गया है। प्रबन्धकोश तथा मुस्लिम लेखक फिरिश्ता के विवरण से पता चलता है कि उसने सुल्तान महमूद को पराजित किया था। किन्तु इस विवरणों की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। उसकी किसी भी विजय के विषय में हमें निश्चित रूप से पता नहीं है। तत्पश्चात् उसका पुत्र वाक्पतिराज द्वितीय राजा बना। पृथ्वीराजविजय से पता चलता है कि उसने आघाट के गुहिलवंशी शासक अम्बा को पराजित किया। आघाट की पहचान उदयपुर के समीप स्थित अहाड़ से की जाती है जहाँ गुहिल राजवंश की राजधानी थी। उसका उत्तराधिकारी वीर्याराम हुआ जिसे परमारवंशी भोज ने पराजित कर मार डाला। परमारों का कुछ समय के लिए शाकम्भरी पर अधिकार हो गया। किन्तु वीर्याराम के भाई चामुण्डराज ने परमारों को पराजित कर अपनी राजधानी पर पुनः अधिकार कर लिया। उसके समय में उत्तरी-पश्चिमी भाग पर तुर्कों के आक्रमण प्रारम्भ हो चुके थे। प्रबन्धकोश में उसे 'सुल्तान का हत्यारा' कहा गया है। हम्मीर महाकाव्य से पता चलता है कि उसने हेजीमुद्दीन नामक मुस्लिम शासक को हराकर मार डाला था। सुरजनचरित से भी इसकी पुष्टि होती है। चूंकि पंजाब का प्रदेश महमूद गजनवी के साम्राज्य का अंग था, ऐसा लगता है कि उसके किसी उत्तराधिकारी के साथ चामुण्डराज का संघर्ष हुआ जिसे उसने पराजित किया था।

---

[1] विग्रह राजोभूत्तत्सुत वासवोपमः । वंशलक्ष्मीर्ज्जयश्रीश्च येनैते विधिरोद्धृते ।।

दुर्लभराज तृतीय

चामुण्डराज के बाद उसका पुत्र दुर्लभराज तृतीय राजा बना। उसे वीर सिंह भी कहा जाता है। प्रबन्धकोश से ज्ञात होता है कि उसने गुजरात के चालुक्य नरेश कर्ण को हराया था। बताया गया है कि वह गुर्जर नरेश को जंजीरों में बांध कर अजमेर लाया तथा उसे बाजार में दही बेचने को मजबूर किया। हम्मीर महाकाव्य में तो यह कहा गया है कि उसने कर्ण की हत्या कर दी, लेकिन यह ठीक नहीं है क्योंकि कर्ण दुर्लभराज के बाद भी जीवित रहा। पृथ्वीराजविजय के अनुसार दुर्लभराज 'मातंगों' के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया। इससे तात्पर्य म्लेच्छ अथवा मुसलमानों से है। मुसलमानों का यह आक्रमण सुल्तान इब्राहिम (1059–98 ई0) के समय में हुआ था।

विग्रहराज तृतीय

दुर्लभराज तृतीय के बाद उसका भाई विग्रहराज तृतीय राजा बना। उसके समय में परमारों के साथ चौहानों की मित्रता स्थापित हुई। पृथ्वीराजविजय से पता चलता है कि विग्रहराज ने मालवा के राजा उदयादित्य (1059–87 ई0) की सहायता की थी। उसके द्वारा दिये गये सारंग नामक अश्व की सहायता से मालवराज गुर्जर नरेश कर्ण को परास्त करने में सफल हुआ। संबंधों को और अधिक प्रगाढ़ बनाने के उद्देश्य से दोनों राजवंशों में वैवाहिक संबंध स्थापित हुआ तथा परमारवंश की कन्या राजदेवी का विवाह विग्रहराज के साथ सम्पन्न हुआ। प्रबन्धकोश से पता चलता है कि विग्रहराज एक दुराचारी प्रवृत्ति का व्यक्ति था। उसने महासत्या नामक एक ब्राह्मण पत्नी का अपहरण किया जिसके शाप से उसका विनाश हो गया।

पृथ्वीराज प्रथम

विग्रहराज तृतीय का पुत्र तथा उत्तराधिकारी पृथ्वीराज प्रथम अपने पिता के बाद गद्दी पर बैठा। एक लेख में उसे 'परमभट्टारक महाराजाधिराजपरमेश्वर' कहा गया है जो उसकी शक्ति का परिचायक लगता है। पृथ्वीराजविजय के अनुसार उसने सात सौ चालुक्यों को पराजित कर मार डाला था जो ब्राह्मणों को लूटने की नियत से पुष्करतीर्थ में घुस आये थे। यह घटना गुजरात के चालुक्य नरेश कर्ण अथवा उसके उत्तराधिकारी जयसिंह सिद्धराज के समय की हो सकती है। तीर्थयात्रियों की सुविधा के लिये उसने सोमनाथ मन्दिर के मार्ग पर एक अन्नसय (alms house) स्थापित करवाया था। जैन स्रोतों से पता चलता है कि रणथम्भौर पर उसका अधिकार था जहाँ उसने जैन मन्दिरों पर स्वर्णकलश चढ़ाये थे। राजशेखर के प्रबन्धकोश में उसे तुर्क-सेना का विजेता बताया गया है। इस सेना ने सुल्तान बगुलीशाह के नेतृत्व में उसके राज्य पर आक्रमण किया था। यह बगुलीशाह संभवतः हजीब तुगातिगीन का सेनानायक था। इस प्रकार पृथ्वीराज प्रथम एक शक्तिशाली और धर्म सहिष्णु राजा था।

अजयराज

पृथ्वीराज प्रथम के बाद उसका पुत्र अजयराज शासक बना। वह एक कुशल योद्धा तथा महान् विजेता था। पृथ्वीराजविजय के अनुसार उसने मालवा के राजा सुल्हण को पराजित किया तथा उसे घोड़े की पीठ पर बांधकर अजमेर ले आया। यह सुल्हण संभवतः परमार नरेश नरवर्मा का सेनापति था। बिजौलिया लेख से पता चलता है कि उसने चच्चिग, सिंघल तथा यशोराज नामक तीन वीरों को हराया था जो श्रीमार्ग तथा दुर्छ से संबंधित थे। श्रीमार्ग की पहचान श्रीपथ (राजस्थान के भरतपुर के समीप स्थित वर्तमान बयना) से की जाती है। दुर्छ बुन्देलखण्ड का दुधई क्षेत्र है। उक्त तीनों वीर स्वतंत्र शासक न होकर किसी सार्वभौम शक्ति के सामन्त प्रतीत होते हैं। इन सबकी विजय कर पृथ्वीराज ने अपनी शक्ति एवं प्रतिष्ठा काफी बढ़ा ली। मथुरा तथा उसके आस-पास से उसकी रजत मुद्रायें मिलती हैं जो इस बात की सूचक हैं कि वहाँ उसका अधिकार था। पृथ्वीराजविजय से पता चलता है कि उसने तुर्कों के विरुद्ध भी सफलता प्राप्त की थी। प्रबन्धकोश में कहा गया है कि उसने सुल्तान शहाबुद्दीन को पराजित किया था। मुस्लिम लेखक मिनहाज-उल-सिराज लिखता है कि गजनी के सुल्तान बहराम शाह ने भारत पर कई आक्रमण किये थे। बहुत संभव है प्रारम्भिक अभियान के दौरान उसका अजयराज से संघर्ष हुआ हो तथा चाहमान शासक ने उसे पीछे ढकेल दिया हो। अजयराज एक महान् निर्माता भी था। पृथ्वीराज विजय के अनुसार उसने अजमेर नगर की स्थापना करवाई तथा वहाँ अपनी राजधानी ले गया। उसने इस नगर को भव्य भवनों से अलंकृत करवाया। उसके पास एक विशाल टकसाल गृह भी था जिससे विविध प्रकार के सिक्के ढाले जाते थे। उसकी तथा उसकी राजमहिषी सोमल्लदेवी की बहुसंख्यक एवं कई आकार-प्रकार की रजत मुद्रायें प्रकाश में आई है जिनसे उसके साम्राज्य की समृद्धि सूचित होती है। बताया गया है कि अजयराज ने स्वयं अपने पुत्र के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया तथा अपने जीवन के अन्तिम दिन पुष्कर तीर्थ में तपस्या करते हुए व्यतीत किया।

अर्णोराज

अजयराज का उत्तराधिकारी उसका पुत्र अर्णोराज हुआ जिसने 1130 ईस्वी से लेकर 1150 ईस्वी के लगभग तक शासन किया। लेखों में उसे 'महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभट्टारक' की उपाधि प्रदान की गयी है जिससे पता चलता है कि वह एक शक्तिशाली राजा था। पृथ्वीराजविजय से ज्ञात होता है कि उसने अजमेर पर आक्रमण करने वाले तुर्क शासक को पराजित किया तथा उसकी सेना का संहार किया। दुर्भाग्यवश इस तुर्क आक्रान्ता का नाम नहीं मिलता। ज्ञात होता है कि अजमेर में इस विजय पर भारी हर्षोल्लास हुआ तथा राजा ने उस स्थान पर जहाँ तुर्क सैनिक मारे गये थे, की शुद्धि के लिये एक झील का निर्माण करवाकर चन्द्रा नदी के जल उसमें भरवा दिया। बिजोलिया लेख से पता चलता है कि उसने मालवा पर आक्रमण कर परमार नरेश नरवर्मा को पराजित किया था। इसमें पराजित परमार नरेश का नाम निर्वाणनारायण दिया गया है जो नरवर्मा की उपाधि थी। अजमेर लेख में कहा गया है कि अर्णोराज ने पराजित मालवराज के हाथियों पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया। वह शैवमतानुयायी था तथा पुष्करतीर्थ में उसने वाराह मन्दिर का निर्माण करवाया था। वृद्धावस्था में वह अपने बड़े पुत्र जगदेव द्वारा मार डाला गया।

अर्णोराज के चार पुत्रों में सबसे शक्तिशाली विग्रहराज चतुर्थ सिद्ध हुआ जिसने अपने अन्य भाईयों को अपदस्थ कर गद्दी प्राप्त किया।

चौहान सत्ता का चर्मोत्कर्ष : विग्रहराज चतुर्थ

चौहान वंशी राजाओं में विग्रहराज चतुर्थ (1153–1163 ईस्वी) सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था। उसका शासन चाहमान वंश में एक युगान्तकारी अध्याय है। उसने अपने समकालीन उत्तर भारत के प्रायः समस्त राजवंशों को पराजित कर अपने वंश को सार्वभौम स्थिति में ला दिया। परमार साम्राज्य के विघटन के पश्चात् देश की पश्चिमोत्तर सीमा की रक्षा का भार चाहमानों पर ही आ पड़ा तथा विग्रहराज ने सफलतापूर्वक उसका निर्वहन किया। उसने लाहौर के यामिनी वंश की शक्ति का भी विनाश किया तथा उसके बारम्बार होने वाले आक्रमणों से देश की रक्षा की।

विग्रहराज की भारतीय प्रदेशों की विजय में उसकी दिल्ली विजय सबसे उल्लेखनीय है। यहाँ तोमरवंश का शासन था। बिजोलिया लेख से इस विजय की सूचना मिलती है। दिल्ली के तोमर शासकों के विरुद्ध चौहान शासकों का संघर्ष बहुत पहले से ही चल रहा था किन्तु अभी तक उन्हें सफलता नहीं मिली थी। तोमर वंश की स्वाधीनता समाप्त कर उसे अपना सामन्त बना लेना विग्रहराज की सबसे बड़ी सफलता थी। दशरथ शर्मा के अनुसार पराजित तोमर राजा तंवर था। लेख के अनुसार 'उसने ढिल्लिका तथा असिका पर अधिकार किया।'[1] यहाँ ढिल्लिका से तात्पर्य दिल्ली तथा असिका से तात्पर्य हाँसी से है। पहले तोमर प्रतिहारों की अधीनता स्वीकार करते थे। प्रतिहार साम्राज्य के पतनोपरान्त तोमर कुछ समय के लिये स्वतंत्र हो गये। गहड़वाल लेख चन्द्रदेव के समय दिल्ली पर अधिकार का दावा करते हैं। यदि यह सही है तो ऐसा निष्कर्ष निकलता है कि तोमरो के साथ–साथ गहड़वालों को भी विग्रहराज के हाथों पराजित होना पड़ा। अब तोमर राज्य चाहमानों के अधीन एक सामन्त राज्य बन गया। विग्रहराज को अपने समकालीन चालुक्य तथा परमार राजाओं के विरुद्ध भी सफलता मिली। उसके पिता अर्णोराज को चालुक्य शासक कुमारपाल के हाथों पराजित होना पड़ा था। अतः इस कलंक को धोने के उद्देश्य से विग्रहराज ने चालुक्यों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ दिया। उसने कुमारपाल को पराजित कर मेवाड़ तथा मारवाड़ पर अपना अधिकार कर लिया। नाडोल, चित्तौड़ तथा जालोर पर भी उसने अपना अधिकार सुदृढ़ कर लिया। इन स्थानों में चालुक्यों के सामन्त शासन कर रहे थे। चित्तौड़ में सज्जन नामक सामन्त था जिसे विग्रहराज के आक्रमण में मार डाला गया। नाडोल पर आक्रमण कर उसने कुन्तपाल को हराया तथा पूरे प्रदेश को रौंद डाला। जालोर को जला दिया तथा पल्लिका को तहस–नहस कर दिया। इस प्रकार स्पष्ट है कि विग्रहराज ने चालुक्य साम्राज्य को भारी क्षति पहुंचायी। अब उसने अपने पिता की पराजय का भरपूर बदला ले लिया। बिजौलिया लेख में भदानक राज्य का उल्लेख हुआ है जिसे विग्रहराज ने जीता था। इसकी स्थिति मथुरा तथा भरतपुर के बीच बताई गयी है।

विग्रहराज के दिल्ली–शिवालिक लेख से पता चलता है उसने तुर्क आक्रमणकारी से देश की रक्षा की थी। उसका समकालीन लाहौर का तुर्क शासक खुसरूशाह था जिसने उसके राज्य पर आक्रमण किया। ज्ञात होता है कि तुर्क आक्रमणकारी बघेरा तक बढ़ आये थे। यह स्थान राजस्थान में अजमेर के समीप स्थित था। किन्तु विग्रहराज के भीषण प्रतिरोध के कारण उन्हें वापस लौटना पड़ा। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने तुर्कों के कुछ प्रदेश भी जीत लिये। बिजौलिया लेख में उल्लिखित हांसी संभवतः ऐसा ही प्रदेश था जहां भारत में मुस्लिम राज्य की बाहरी चौकी थी। ललितविग्रहराज नाटक में कहा गया है कि विग्रहराज ने मित्रों, ब्राह्मणों, तीर्थों तथा देवालयों की रक्षा के निमित्त तुर्कों से युद्ध किया था।

[1] प्रतोल्यां च वलभ्यां च येन विश्रामितं यशः । ढिल्लिकाग्रहणश्रांतमासिका लाभलम्भितं ।।

उसने अपने उत्तराधिकारियों को भी भविष्य में यही करने के लिये प्रेरित किया था। दिल्ली लेख में कहा गया है कि विग्रहराज ने म्लेच्छों (तुर्कों) का समूल नाश कर आर्यावर्त्त देश का नाम सार्थक किया। बताया गया है कि उसने हिमालय से विन्ध्यपर्वत तक के बीच के क्षेत्र से कर वसूल किया था।[1] दिल्ली शिवालिक लेख हिमालय की तलहटी तक उसका अधिकार प्रमाणित करता है जहां वह अपनी विजयों के प्रसंग में पहुंचा होगा। इस प्रकार विग्रहराज के समय में चौहान साम्राज्य का काफी विस्तार हुआ। इसमें सतलज तथा यमुना नदियों के बीच स्थित पंजाब का एक बड़ा भाग, उत्तर पूर्व में उत्तरी गंगा घाटी का एक भाग भी सम्मिलित था। इस प्रकार विग्रहराज उत्तर भारत का वास्तविक सार्वभौम सम्राट था जिसने अपने वंश को प्रतिष्ठा को चरम सीमा पर पहुंचाया। अपनी महानता के अनुरूप उसने परमभट्टारक, परमेश्वर, महाराजाधिराज जैसी उपाधियां धारण की।

विजेता होने के साथ–साथ वह स्वयं एक विद्वान् तथा विद्वानों का आश्रयदाता भी था। जयानक उसे 'कविबान्धव' कहता है जिसके निधन से यह शब्द ही विलुप्त हो गया। सोमदेव ने उसे 'विद्वानों में सर्वप्रथम' (विपश्चितानामाद्यः) कहा है। उसने हरिकेलि नामक नाटक की रचना की। इसकी कुछ पंक्तियां अजमेर स्थित 'ढाई दिन का झोंपड़ा' की सीढ़ियों पर उत्कीर्ण हैं। यह नाटक भारवि के 'किरातार्जुनीयम्' के अनुकरण पर लिखा गया है तथा इसमें उच्चकोटि की काव्यात्मक प्रतिभा प्रदर्शित है। कीलहार्न के शब्दों में इससे इस बात का वास्तविक एवं असंदिग्ध प्रमाण मिलता है कि प्राचीन भारत के शक्तिशाली शासक काव्ययश में कालिदास तथा भवभूति से स्पर्धा करने को उत्सुक थे।[2] स्वयं विद्वान होने के साथ–साथ विग्रहराज विद्वानों का महान् संरक्षक भी था। उसके दरबार में सोमदेव निवास करता था जिसने 'ललितविग्रहराज' नामक ग्रन्थ लिखा। इसमें उसने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा की है। इस नाटक की पंक्तियों को पाषाण खण्डों पर उत्कीर्ण कराकर अजमेर के सरस्वती मन्दिर में रखा गया था जिसे कालान्तर में तुर्क आक्रान्ताओं ने ध्वस्त कर दिया। वह कला और स्थापत्य का पोषक भी था। उसने अजमेर नगर को भव्य कलाकृतियों एवं स्मारकों से अलंकृत करवाया। इनमें सरस्वती मन्दिर का निर्माण सबसे अधिक उल्लेखनीय है जिसे भारतीय कला की अत्युत्कृष्ट रचनाओं में स्थान दिया गया है।[3] उसके काल का दूसरा निर्माण 'वीसलसर' नामक झील है जिसे इस समय विस्ल्या अथवा बिसलिया कहा जाता है। यह पुष्कर झील के समान थी। स्वयं शैव होते हुए भी विग्रहराज अन्य धर्मों एवं सम्प्रदायों के प्रति सहिष्णु बना रहा। इस प्रकार उसका शासन काल राजनीतिक एवं सांस्कृतिक, दोनों ही उपलब्धियों की दृष्टि से उल्लेखनीय है। विग्रहराज चतुर्थ इतिहास में बीसलदेव के नाम से प्रसिद्ध है।

पृथ्वीराज द्वितीय

विग्रहराज चतुर्थ के बाद उसका पुत्र अपरगांगेय कुछ समय के लिए राजा बना किन्तु उसकी हत्या कर पृथ्वीराज ने राजगद्दी पर अधिकार कर लिया। वह पृथ्वीराज द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध है। पृथ्वीराज विग्रहराज के बड़े भाई जगद्देव का पुत्र था। तुर्कों के आक्रमण से अपने साम्राज्य की रक्षा करने के लिये उसने हांसी के दुर्ग पर अपना अधिकार सुदृढ़ कर किया तथा अपने मामा गुहिलवंशी किल्हण को वहाँ का रक्षक नियुक्त किया। एच0 सी0 राय का विचार है कि उसने लाहौर के तुर्क शासक खुसरूमलिक ताजुद्दौला को पराजित किया था जो एक विलासी राजा था।

सोमेश्वर

पृथ्वीराज द्वितीय ने केवल पाँच वर्षों (1164–69 ईस्वी) तक शासन किया जिसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी। चूँकि उसका कोई पुत्र नहीं था, अतः उसके चाचा सोमेश्वर ने सत्ता ग्रहण की। उसका बचपन चालुक्यों की राजधानी अन्हिलवाड़ में व्यतीत हुआ। कुमारपाल की देखरेख में वह बड़ा हुआ तथा संभवतः सेना में कोई उच्च पद भी प्राप्त कर लिया। पृथ्वीराजविजय के अनुसार एक युद्ध में वीरता प्रदर्शित करते हुए उसने कोंकण के शिलाहार वंशी राजा मल्लिकार्जुन का वध कर दिया था। यहीं उसका विवाह कर्पूरदेवी से हुआ जो त्रिपुरी की राजकुमारी थी। उससे सोमेश्वर को दो पुत्र—पृथ्वीराज तथा हरिराज, उत्पन्न हुए थे। चाहमान साम्राज्य की गद्दी सम्हालते समय वह पर्याप्त

---

1 अविन्ध्यादाहिमाद्रे विंरचित विजयस्तीर्थयात्रा प्रसङ्गादुद्ग्रीवेषु प्रहर्त्ता नृपतिषु विनमत्कन्धरेषु प्रसन्नः ।
आर्यावर्त्त यथार्थ पुन रपि कृतवान्म्लेच्छ विच्छेदनाभिर्हेव शाकम्भरीन्द्रों जगति विजयते वीसलक्षोणिपालः ।।
सम्प्रति चाहमान तिलकः शाकम्भरी भूपतिः श्रीमद्विग्रहराज एष विजयी सन्तान जानात्मनः ।
अस्माभिः करदं व्यधायि हिमवद्विन्ध्यान्तरालं भुवः शेषस्वीकरणाय माडस्तु भवतामुद्योग शून्यंमनः ।।

2 Actual and undoubted proof is here afforded to us of the fact that powerful Hindu rulers of the past were eager to compete with Kalidas and Bhavabhuti for poetical fame. —Indian Antiquery, XX, p-201.

3 As a specimen of Hindu sculpture, this college building marks the high watermark of excellence attained in the art. —H.B. Sharda : Ajmer, p-48

प्रौढ़ हो चुका था। उसका मंत्री कदम्बवास अथवा कैम्बास था जिसके परामर्श से उसने शासन का संचालन किया। ऐसा प्रतीत होता है कि चौलुक्य वंश में कुमारपाल के बाद जब अजयपाल राजा बना, तो सोमेश्वर के साथ उसके संबंध अच्छे नहीं रहे तथा उसे चालुक्य नरेश के हाथों पराजित भी होना पड़ा। पृथ्वीराजरासो के अनुसार भीम द्वितीय (चालुक्य वंशी) ने आक्रमण कर सोमेश्वर की हत्या कर दी। उसका शासन 1169 से 1177 ईस्वी तक माना जाता है। उसने शान्तिपूर्वक शासन किया तथा उसके काल की किसी महत्वपूर्ण राजनैतिक घटना के विषय में हमें पता नहीं लगता। उसे अनेक मन्दिरों के निर्माण का श्रेय दिया गया है।

पृथ्वीराज तृतीय (1177–1192 ई0)

सोमेश्वर के पश्चात् उसकी रानी कर्पूरदेवी से उत्पन्न पुत्र पृथ्वीराज चौहान वंश का सबसे प्रसिद्ध शासक हुआ। वह पृथ्वीराज तृतीय कहा जाता है। कथाओं में उसे 'रायपिथौर' कहा गया है। प्रसिद्ध कवि चन्दवरदाई उसकी राजसभा में निवास करता था जिसने पृथ्वीराजरासो नामक महाकाव्य की रचना की थी। ज्ञात होता है जब पृथ्वीराज अवयस्क था तभी उसके पिता की मृत्यु हो गयी। अतः उसकी माता ने योग्य मन्त्री कैम्बास की सहायता से संरक्षिका के रूप में कुछ समय तक शासन का सफलतापूर्वक संचालन किया। इसके अतिरिक्त उसके चाचा भुवनेकमल्ल ने भी प्रशासनिक कार्यों में उसे सहयोग प्रदान किया। हम्मीरकाव्य तथा पृथ्वीराजरासो से पता चलता है कि पृथ्वीराज को अत्यन्त निपुणता के साथ विविध विद्याओं और कलाओं की शिक्षा प्रदान की गयी। धनुर्विद्या में उसने विशेष निपुणता प्राप्त की तथा अपने समय का वह सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर था। 1180 ईस्वी के लगभग वह वयस्कता को प्राप्त हुआ तथा शासन का भार उसने स्वतन्त्र रूप से ग्रहण किया। राजा होने के पश्चात् वह अपनी शक्ति एवं साम्राज्य के विस्तार में जुट गया।

अपने साम्राज्य-विस्तार एवं शक्ति को सुदृढ़ करने की प्रक्रिया में सर्वप्रथम उसकी भिड़न्त अपने चाचा नागार्जुन से हुई। नागार्जुन, विग्रहराज चतुर्थ का पुत्र तथा अपरगांगेय का कनिष्ठ भाई था जो पृथ्वीराज की अल्पायु का लाभ उठाकर राजगद्दी पर अधिकार करना चाहता था। पृथ्वीराजविजय से पता चलता है कि उसने गुडपुर नगर पर अधिकार कर लिया। कुछ स्रोतों में उसे अजमेर का भी शासक बताया गया है। इस स्थान की पहचान हरियाणा के गुड़गांव से की गयी है जो पहले तोमरों के अधिकार में था। पृथ्वीराज अत्यन्त क्रुद्ध हुआ तथा उसने एक बड़ी सेना लेकर गुडपुर के दुर्ग का घेरा डाला। नागार्जुन जान बचाकर कायरों की भाँति भाग खड़ा हुआ किन्तु उसके सेनापति देवभट तथा अन्य अधिकारियों ने युद्ध जारी रखा। पृथ्वीराज ने उन सबको न केवल परास्त किया, अपितु उसके सभी सहयोगियों को मौत के घाट उतार दिया। शत्रुओं के सिर काट कर अजमेर के दुर्ग के बाहर लटका दिये गये। ऐसा शायद भविष्य में विद्रोहियों को चेतावनी देने के लिये किया गया। हिन्दू शासकों में ऐसे क्रूरतम प्रतिशोध के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं।

इसके पश्चात् पृथ्वीराज ने मदानक राज्य पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन कर लिया। इसके बाद उसका जेजाकभुक्ति के चन्देल वंश के साथ भी संघर्ष हुआ। पृथ्वीराज एक महान् योद्धा था। 1182 ईस्वी में चन्देल वंश के राजा परमर्दिदेव को पराजित कर उसकी राजधानी महोबा पर उसने अधिकार कर लिया। रासो से पता चलता है कि पृथ्वीराज ने विजय करते हुए कालंजर के प्रसिद्ध दुर्ग का घेरा डाला। वहाँ चन्देल राजा परमर्दि पकड़ा गया तथा बन्दी बनाकर उसके सामने लाया गया। वहाँ से किसी प्रकार भाग कर उसने आत्महत्या कर लिया। यह भी पता चलता है कि महोबा के युद्ध में गहड़वाल शासक जयचन्द्र ने आल्हा तथा ऊदल नामक बनाफर सरदारों के साथ चन्देल नरेश की सहायता की थी। किन्तु पृथ्वीराज ने इन सबको करारी मात दी। पृथ्वीराज का मदनपुर से प्राप्त लेख (1182 ईस्वी) जेजाकभुक्ति पर उसके आक्रमण तथा उसके लूटे जाने का वर्णन प्रस्तुत करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वीराज स्थायी रूप से चन्देलों के भूभाग पर अधिकार करने में सफल नहीं हुआ तथा शीघ्र ही महोबा और कालंजर के ऊपर चन्देलों का आधिपत्य हो गया। कालिंजर लेख (1201 ई0) के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है जिसमें परमर्दि को 'दक्षिणाधिपति' कहा गया है। संभव है ताराइन के द्वितीय युद्ध के तत्काल बाद ही परमर्दि ने महोबा तथा कालंजर के ऊपर अपना अधिकार कर लिया हो।

पृथ्वीराजरासो में यह भी उल्लेख मिलता है कि पृथ्वीराज ने गुजरात के चालुक्य शासक भीम को मार डाला। बताया गया है कि पृथ्वीराज के चाचा कान्हदेव ने भीमदेव के चाचा सारंगदेव के सात पुत्रों को उस समय मार डाला था जब वे चाहमान दरबार में टिके हुए थे। इस पर भीम अत्यन्त क्रोधित हुआ जिसने प्रतिशोध में चाहमान राज्य पर आक्रमण कर दिया। उसने पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर की हत्या कर दी तथा नागोर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया किन्तु पृथ्वीराज ने गुजरात नरेश भीम पर आक्रमण कर उसकी हत्या की तथा नागोर पर पुनः अधिकार कर लिया। लेकिन यह विवरण ऐतिहासिक नहीं लगता। पृथ्वीराजविजय से ही पता चलता है कि सोमेश्वर की स्वाभाविक मृत्यु हुई तथा चालुक्य भीम, जैसा कि कादी दानपत्र से सूचित होता है, कम से कम 1238 ई0 तक शासन करता रहा। तथापि चालुक्य-चाहमान

संघर्ष की घटना सही प्रतीत होती है। प्रहलादनदेव रचित पार्थपराक्रमव्यायोग नाटक से पता लगता है कि आबू के चालुक्यों के परमार सामन्त धारावर्ष ने जांगल देश के राजा के रात्रि में किये गये आक्रमण को विफल कर दिया था। जिनपति सूरि के खतरगच्छपट्टावली से भी इसका समर्थन होता है जहां बताया गया है कि दोनों वंशों का युद्ध 1187 ई0 पूर्व ही समाप्त हो गया था। दोनों राजवंशों के युद्ध का कोई परिणाम नहीं निकला तथा परस्पर संधि हो गयी। चालुक्य नरेश का प्रधान मन्त्री प्रतिहार जगदेव चाहमान नरेश से शत्रुता मोल नहीं लेना चाहता था और वह संधि को बनाये रखने का बहुत इच्छुक था।

पृथ्वीराज जैसे साम्राज्यवादी शासक के समक्ष कन्नौज का गहड़वाल नरेश जयचन्द्र एक बड़ी चुनौती बना हुआ था। वह भी समान रूप से महत्वाकांक्षी था तथा पृथ्वीराज को अपनी प्रभुसत्ता के मार्ग में बड़ी बाधा मानता था। ऐसी दशा में दोनों के बीच संघर्ष अवश्यंभावी हो गया। इस संघर्ष का मुख्य कारण दिल्ली का भूभाग था जिस पर दोनों अधिकार करना चाहते थे। गहड़वालों तथा चाहमानों में शत्रुता पहले से ही विद्यमान थी। चाहमान नरेश विग्रहराज चतुर्थ ने जयचन्द्र के पिता विजयचन्द्र को पराजित कर दिल्ली प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। अतः यह स्वाभाविक था कि जयचन्द्र के मन में अपने पैतृक प्रदेश को पुनः हस्तगत करने की भावना जागृत होती। संयोगवश दोनों में संघर्ष की स्थिति शीघ्र उपस्थित हुई। पृथ्वीराजरासो से पता चलता है कि जयचन्द्र की रूपवती कन्या संयोगिता पृथ्वीराज से प्रेम करने लगी। जयचन्द्र ने राजसूय यज्ञ तथा स्वयंवर का आयोजन किया। इस अवसर पर पृथ्वीराज को नीचा दिखाने के लिये उसे आमंत्रित नहीं किया। पृथ्वीराज स्वयंमेव कुछ चुने हुए सहायकों के साथ छद्म रूप में कन्नौज जा पहुंचा तथा संयोगिता को बलपूर्वक भरी सभा से उठा ले आया। इस प्रक्रिया में उसके कुछ विश्वस्त एवं बहादुर सैनिकों को प्राण गंवाने पड़े। इससे दोनों के पहले से ही बिगड़े सम्बन्ध और भी कटुतापूर्ण हो गये। अनेक विद्वान पृथ्वीराज–संयोगिता कथा को ऐतिहासिक नहीं मानते। किन्तु हम इसे कोरी कल्पना नहीं कह सकते क्योंकि इसका उल्लेख समकालीन तथा परकालीन अनेक ग्रन्थों में हुआ है। मुस्लिम लेखक भी इसकी ओर संकेत करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह घटना तराइन के प्रथम युद्ध (1191 ई0) के बाद घटित हुई थी। पृथ्वीराज ने जयचन्द्र की शक्ति और प्रतिष्ठा दोनों को धूमिल कर दिया। अब जयचन्द्र पृथ्वीराज का पक्का शत्रु बन गया तथा अपने अपमान का बदला लेने का अवसर ढूंढ़ने लगा। प्रचलित मत के अनुसार उसने स्वयं मुहम्मद गोरी के पास पृथ्वीराज पर आक्रमण करने तथा उसे सहायता देने के वचन के साथ अपना निमंत्रण भेजा था। इसका समर्थन तो पुष्ट प्रमाणों से नहीं होता लेकिन पुरातन प्रबन्धसंग्रह से पता चलता है कि जब मुहम्मद गोरी के हाथों पृथ्वीराज की तराइन के द्वितीय युद्ध में पराजय की बात जयचन्द्र ने सुनी तो उसने अपनी राजधानी में खुशियां मनायी।

मुहम्मद गोरी का आक्रमण तथा चाहमान साम्राज्य का अन्त

पृथ्वीराज तृतीय के शासन काल की अति महत्वपूर्ण घटना गोरी का आक्रमण है। उल्लेखनीय है कि उसके पूर्वज विग्रहराज चतुर्थ ने कई बार म्लेच्छों (मुसलमानों) को पराजित कर अपनी वीरता का परिचय दिया था। हम्मीर महाकाव्य से पता चलता है कि पृथ्वीराज ने भी मुसलमानों को मिटा देने की प्रतिज्ञा की थी। लेकिन राजनीतिक सूझ–बूझ और दूरदर्शिता की कमी के कारण वह अपने उद्देश्य की पूर्ति में असफल रहा। गजनी में अपनी स्थिति मजबूत कर लेने के बाद मुहम्मद गोरी ने 1178 ई0 में गुजरात पर आक्रमण किया। चालुक्य नरेश भीम ने उसे काशह्रद के युद्ध में बुरी तरह पराजित कर दिया। इस समय पृथ्वीराज तटस्थ रहा तथा उसने चालुक्य नरेश की कोई सहायता नहीं की। इसके पूर्व गोरी ने नाडोल के चाहमान राज्य पर भी आक्रमण कर लूट–पाट किया था। किन्तु पृथ्वीराज ने उन्हें भी कोई सहायता नहीं दी। गोरी ने भारतीय शासकों के आपसी मनमुटाव एवं संघर्ष का लाभ उठाते हुए अपना अभियान प्रारम्भ किया। पृथ्वीराजविजय से पता चलता है कि गुजरात पर आक्रमण के पूर्व उसने पृथ्वीराज के पास समर्पण करने तथा उसे अपना सम्राट मान लेने का संदेश एक दूत के माध्यम से भिजवाया था। इस पर पृथ्वीराज अत्यन्त कुपित हुआ तथा उसने गोरी की प्रतिष्ठा धूल में मिला देने की प्रतिज्ञा की। भारतीय स्रोतों से पता चलता है कि 1191 ई0 में तराइन के प्रथम युद्ध के पूर्व दोनों में कई युद्ध हुए थे तथा हर बार तुर्क आक्रान्ता को मुंह की खानी पड़ी थी। इसके विपरीत मुसलमान लेखक केवल दो युद्धों का ही उल्लेख करते हैं।

1186 ई0 में पंजाब पर अधिकार कर लेने के बाद पृथ्वीराज तथा मुहम्मद गोरी की सीमायें एक दूसरे से मिलने लगीं। गोरी को पता था कि अजमेर के चाहमानों को पराजित किये बिना भारत विजय का उसका स्वप्न पूरा नहीं हो सकता। अतः उसने बाद के छः वर्षों को चाहमान शक्ति को कुचलने की योजना बनाने तथा तदनुसार तैयारी करने में ही व्यतीत किये। दोनों की सेनाओं के बीच 1191 ई0 में तराइन (हरियाणा के करनाल जिले में स्थित आधुनिक तरावड़ी) के मैदान में खुला संघर्ष हुआ जिसे तराइन का प्रथम युद्ध कहा जाता है। सभी स्रोतों— भारतीय तथा विदेशी, से पता चलता

है कि इस युद्ध में पृथ्वीराज ने मुहम्मद गोरी को बुरी तरह पराजित किया। संभव है इसके पूर्व भी पृथ्वीराज ने गोरी को पराजित किया हो। पृथ्वीराज के सामन्त गोविन्दराज ने तराइन के प्रथम युद्ध में गोरी को बुरी तरह घायल कर दिया। उसकी सेना में भगदड़ मच गयी तथा तुर्क सैनिक भागते हुये अपने क्षेत्र मुल्तान में सुरक्षित पहुंच गये। इस युद्ध में पृथ्वीराज तथा उसके बहादुर राजपूत सरदारों एवं सैनिकों ने अद्भुत रणकुशलता एवं सैनिक चातुर्य प्रदर्शित किया। पृथ्वीराज ने घोर अदूरदर्शिता का परिचय दिया तथा भागती हुई मुसलमानी सेना का उसने पीछा नहीं किया। मिनहाजुद्दीन हमें बताता है कि पराजित होने के बाद गोरी की सेना बिना किसी कष्ट के स्वदेश लौट गयी तथा चौहानों ने उसे परेशान नहीं किया। वस्तुतः यह चाहमान सम्राट की सामरिक दृष्टि से सबसे बड़ी भूल ही कही जायेगी कि उसने शौर्य भावना के चक्कर में अपने शत्रु की स्थिति से पूरा लाभ नहीं उठाया। इस युद्ध के बाद पृथ्वीराज उसकी ओर से निश्चिन्त होकर रंगरेलियाँ मनाने में व्यस्त एवं मस्त हो गया। वह अपनी नवविवाहिता पत्नी संयोगिता से इतना आसक्त हो गया कि प्रशासनिक कार्यों के लिये उसके पास समय नहीं रहा। अब वह विजेता तथा कूटनीतिज्ञ न होकर सुरा-सुन्दरी का ही शौकीन हो गया। दूसरी ओर उसका प्रतिद्वन्दी मुहम्मद गोरी अपनी पराजय का बदला लेने एवं अपमान धोने के लिये निरन्तर तैयारियां करता रहा। इस बीच पृथ्वीराज से अपमानित कई भारतीय राजाओं ने भी उससे भेंट कर सहायता का आश्वासन दिया। जमून के राजा विजयदेव ने अपने पुत्र नरसिंहदेव को गोरी की सेना के साथ लड़ने के लिये प्रस्तुत किया। घतैक के राजा ने भी उसकी सहायता की। बहुत संभव है कि गहड़वाल शासक जयचन्द्र की सहानुभूति भी उसके साथ रही हो जिसका उल्लेख रासो के रचयिता ने किया है। पृथ्वीराज की इस उदासीनता का परिणाम घातक निकला। गोरी को शक्ति जुटाने का पूरा मौका मिल गया तथा दूसरी बार उसने अधिक शक्ति के साथ पुनः आक्रमण किया। तराइन के द्वितीय युद्ध (1192 ई0) में पृथ्वीराज पराजित हुआ और उसकी निर्दयतापूर्वक हत्या की गयी। मुसलमानों ने राजपूत-सेना का भीषण संहार किया। तत्पश्चात् उसकी राजधानी अजमेर को आक्रान्ताओं ने ध्वस्त कर दिया तथा वहाँ के निवासियों को मौत के घाट उतार दिया। मुसलमान सेनाओं ने चौहान राज्य के सभी प्रमुख नगरों पर अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार पृथ्वीराज की राजनीतिक भूल एवं अदूरदर्शिता के परिणामस्वरूप शक्तिशाली चौहान साम्राज्य धराशायी हो गया। तराइन का द्वितीय युद्ध भारतीय इतिहास के निर्णायक युद्धों में माना जाता है। इसने भारतीय भूमि में मुस्लिम सत्ता स्थापित होने का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

यद्यपि तराइन के युद्ध में पृथ्वीराज पराजित हुआ, फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वह अपने समय का महान् योद्धा तथा सेनानायक था। तराइन के द्वितीय युद्ध के पहले तक वह अजेय बना रहा तथा उसने अपने समय की सभी प्रमुख शक्तियों को करारी मात दी थी। उसका साम्राज्य अत्यन्त विशाल था जो सतलज से बेतवा नदी तक तथा हिमालय पर्वत से आबू पर्वत की तलहटी तक विस्तृत था। उसकी अनेकानेक विजयों ने उसे उत्तर भारत का सर्वश्रेष्ठ वीर बना दिया था। टाड के अनुसार 108 सामन्त बराबर उसकी सेवा मे लगे रहते थे जिनमें से अधिकतर पराजित राजा और राजकुमार ही थे। उसका शरीर बलिष्ठ, सुन्दर एवं आकर्षक था। मुस्लिम लेखक भी उसकी शक्ति की प्रशंसा करते हैं। योद्धा होने के साथ-साथ वह विद्वान् तथा विद्वानों का महान् संरक्षक भी था। उसकी राजसभा में लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् निवास करते थे जिनमें जयानकभट्ट, विद्यापति गौड़, पृथ्वीभट्ट, वागीश्वर, जनार्दन, विश्वरूप आदि उल्लेखनीय हैं। चन्दबरदाई उसका राजकवि था जिसका ग्रन्थ पृथ्वीराजरासो हिन्दी साहित्य का प्रथम महाकाव्य माना जाता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वीराज की पराजय के बाद भी कुछ समय तक अजमेर में चाहमान सत्ता बनी रही तथा गोरी ने सम्पूर्ण प्रदेश को अपने साम्राज्य में शामिल नहीं किया। उसने पृथ्वीराज के अवयस्क पुत्र को वहां का राजा बनाया जो उसकी अधीनता में कार्य करता रहा। इसके विपरीत हम्मीर काव्य था विरुद्धविधिध्वंसक के अनुसार पृथ्वीराज के पश्चात् उसका भाई हरिराज कुछ समय के लिये राजा बना। उसने अजमेर पर आक्रमण कर गोरी द्वारा नियुक्त पृथ्वीराज के अवयस्क पुत्र से सिंहासन छीनने का प्रयास किया। किन्तु गोरी के सेनापति कुतुवउद्दीन ऐवक ने उसे पराजित किया। अपने सम्मान की रक्षा के लिये हरिराज ने अजमेर के दुर्ग में आत्मदाह कर लिया। तत्पश्चात (1194 ई0) मुसलमानों का अजमेर पर अधिकार हो गया।